पुलिस! पुलिस!

प्रेम जनमेजय

पुलिस! पुलिस!

प्रेम जनमेजय

प्रेम के व्यंग्यों में भाषा की सामर्थ्य और शैली की विविधता- ये दो तत्व ऐसे हैं जो उन्हें काफी आगे तक ले जा सकते हैं। उनका स्वर सध गया है...

-अजित कुमार

प्रेम जनमेजय के व्यंग्य निबन्धों को पढ़ने के बाद लगा कि जैसे अब मैं अपने परिवेश की रगों और नसों को कहीं ज्यादा अच्छी तरह से समझ रहा हूं।

-डॉ. वीरेन्द्र मेंहदीरत्ता

प्रेम ने ऐसे विषयों पर व्यंग्य लिखे हैं जिन्हें हम रोज जानते हैं, पर कभी महत्वपूर्ण नहीं समझते, कम अज कम इतने महत्वपूर्ण कि उन पर कलम चलाई जा सके-पर 'बेशर्ममेव जयते' पढ़ने पर बरबस ब्रेख्त का एपिक थियेटर ध्यान में आता है जहां जिन साधारण से दिखने वाले विषयों का चित्रण-मंचन किया जाता है कि उन्हें देखकर प्रेक्षक कह उठता है, "क्या यह कभी इतना महत्वपूर्ण भी लगा था..."

-डॉ. हरीश नवल

प्रेम के पास समाज, जीवन, व्यवस्था और राजनीति के मूल्यांकन के लिए एक निश्चित दृष्टिकोण है जो चीजों की, घटनाओं की और स्थितियों की तर्कसम्मत तथा वैज्ञानिक व्याख्या स्वीकार करता है लेकिन विचार के आग्रह से यथार्थ को मनमाना स्वरूप देने का पक्षधर नहीं है। विचार और कथ्य का यह शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व 'प्रेम' के यहां प्रशंसा के बतौर रेखांकित किया जा सकता है।

-धीरेन्द्र अस्थाना

क्रम

पुस्तक और पुलिस	7
ओऽम् शान्ति:	13
जाना पुलिसवालों के यहां, इक बारात में	17
अजनबी	21
गणतंत्र-दिवस के बाद	24
आई एम सॉरी, गोविन्द	27
पत्नी-विरोध में रैली	31
अंगुली और घी	34
कुत्ते की राजनीति	38
युधिष्ठिरी सत्य	41
व्यंग्यकारों की प्रेमिकाएं	49
खिलाड़ी साहित्यकार	54
आया क्रिकेट झूम के	57
डी.ए. और डी.ए.	60
मशहूर दुकानें	63
आपका आचार : भाषा का चमत्कार	66
ओम् अफसराय नम:	70
ओम् वेश्याय नम:	74
पुरुष की यातना का क्या होगा?	77

एक आदरणीय होली 79

जय माता की 82

सीता-अपहरण केस 85

पुस्तक और पुलिस

वह एक रेलगाड़ी का सफर था। राजनीति, समाज, खेल आदि में यात्रा करता हुई हमारी बहस साहित्य पर आ टिकी थी। जब तक स्टेशन नहीं आना था, बहस का कोई-न-कोई अहम मुद्दा तलाशना ही था। मेरे सामने बैठे हुए सज्जन धुआंधार बोल रहे थे। मैं कुछ बोलने की कोशिश भी करता तो, 'मेरी बात पूरी तो होने दीजिए' कहकर 'सज्जन' चुप करा देते। स्टेशन आ नहीं रहा था और वह चुप होने का नाम नहीं ले रहे थे। बीच-बीच में डांटते अलग जा रहे थे। मैं समझ गया कि वह कौन हो सकते हैं।

अवसर मिलते ही मैंने कहा, "तो लगता है आप कहीं पढ़ाते-वढ़ाते हैं?"

"कैसे?"

"भई, जिस तरह से आप बोल रहे हैं, साफ लगता है जैसे आप क्लास ले रहे हों। वैसे भी आजकल छुट्टियां है मन बेईमान हुआ हो, आपने सोचा कि चलो रेलगाड़ी में ही हमारी क्लास ले लें। क्यों, है न ऐसा मैं शरारती मुसकान मुसकराया।

वह जोर से हंसे और हंसते हुए-से बोले, "अरे नहीं भई, पढ़ाने-चढ़ाने से हमारा क्या मतलब! थोड़ा-बहुत समय मिल जाता है तो उसमें अपना शौक पूरा कर लेता हूं। वरना आप ही सोचिए कि कहां साहित्य और कहां पुलिस की नौकरी..."

"आ...ऽ...प...आ...प... पुलिस... में हैं? पुलिस...में...हैं!" मेरी जुबान लड़खड़ा गई और आंखों के आगे अंधेरा छा गया। मैंने अपनी जेब पर हाथ रख लिया और सामान को नजर भर देखा। सोचा, देखने-बातचीत करने में तो यह आदमी शरीफ लगता है।

"क्यों, क्या बात हो गई, आप इतना घबरा क्यों गए हैं? पुलिस का नाम सुन लिया, इसलिए। भाई साहब, इसमें आपका भी कसूर नहीं है। आप तो अपरिचित हैं, यहां अपने रिश्तेदार घर बुलाने से डरते हैं। शुरू-शुरू में तो मेरे बच्चे भी मेरे आते ही खाट के नीचे छिप जाया करते थे।" वह मुसकराये और हंसते हुए बोले, "यहां तक कि सुहागरात में मेरी पत्नी सारी रात मुजरिम की तरह मेरे सामने खड़ी रही थी।"